**International Journal of Advanced Research and Development**
**ISSN: 2455-4030**
**Impact Factor: RJIF 5.24**
**www.advancedjournal.com**
**Volume 2; Issue 6; November 2017; Page No. 847-849**

# संत साहित्य में लोक कल्याण

**डॉ० राजेन्द्र सिंह**
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जनता महाविद्यालय, चरखी दादरी, हरियाणा, भारत।

**प्रस्तावना**

भक्तिकालीन समाज में अनेक विसंगतियाँ और विषमताएँ चारों तरफ फैली हुई थी। उसे अनेक आड़म्बरों और पाखण्ड़ों ने घेरा हुआ था। साथ ही समाज में धार्मिक रूढियाँ और परम्पराएँ तथा अंधविश्वास पूर्ण रूप से परिव्याप्त थे। कतिपय पाखण्ड़ी लोग चमत्कार प्रदर्शन करके लोगों को गुमराह कर रहे थे। जिसके प्रभावस्वरूप समाज सतत् रूप से दूषित हो रहा था। हिन्दू और मुस्लिमों का पारस्परिक वैमनस्य और द्वेषभाव तो जगजाहिर था ही। जिसके परिणामस्वरूप समाज सतत् रूप से अवनति की ओर अग्रसर हो रहा था। ऐसी विपरित परिस्थितियों में संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से समाज में जागरूकता लाने का भरसक प्रयास किया। संतों ने घृणा एवं द्वेषभाव को त्यागने और पारस्परिक समन्वयभाव पर बल दिया ताकि समाज में प्रेम और सौहार्द भाव तथा समरसता लायी जा सके। साथ ही सामजिक दशा और दिशा को उन्नति की ओर अग्रसर किया जा सके। संतों ने इस दायित्व का निर्वहन ईमानदारी से किया है ताकि लोककल्याण की भावना को अमलीजामा पहनाया जा सके। जाति–धर्म से परे, मानवीय एकता का संदेश देते हुए कबीरदास जी ने कहा है–

''हिन्दू तुरूक की एक राह है, सतगुरू इहै बताई।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो, रामहि कहेउ खुदाई।।''1

संतजन कहते हैं कि सारे विश्व का धर्म एक है। हिन्दू–मुस्लिम, सिख–ईसाई में मूल रूप से कोई भेदभाव नहीं है। जब ईश्वर ने सभी को एक समान बनाया है तो यह भेदभाव क्यों ? और किस लिए ? कबीरदास जी ने कहा है–

''एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भाँड़े, एक ही सिरजनहारा।।''2

इस प्रकार संतों ने हिन्दू–मुस्लिम एंव जातीय भेदभाव को दूर कर मानव–मूल्यों की स्थापना की है, लोक कल्याण को ध्यान में रखकर मानव धर्म को ही सर्वोपरि धर्म स्वीकार किया तथा समन्वय भावना पर बल देकर मानव–जाति के कल्याण की कामना करते हुए कहा है–

''जाति–पाति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई।''3

संतों की चिंतन–पद्धति में भक्ति के साथ–साथ जनजीवन की अनुभूतियाँ समाहित हैं। उन्होंने तत्कालीन परिवेश का गहनता से अध्ययन किया और लोक जीवन के सत्य और तथ्य को जन–जन तक पहुँचाया। इस प्रकार संत साहित्य केवल मध्यकालीन युग–परिवेश का सजीवांकन ही नहीं करता अपितु वह समकालीन भौतिकवादी परिवेश के लिए भी उतना ही सार्थक सटीक एवं सारगर्भित एवं प्रासांगिक दिखाई देता है। हिन्दू–मुस्लिम की पारस्परिक वैमनस्यता को दूर करने का संतजन प्रयास करते हैं। वे दोनों को समझाते हुए कहते हैं–

''अरे इन दोउन राह न पाई,
हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई।
हिन्दू अपनी कहै बडाई गागर छूवन न देई।
वेश्या के पायन तर सोवे, यह देखी हिन्दुवाई।
मुसलमान के पीर औलिया मूर्गा मूर्गी खाई
खाला केरी बेटी ब्याहैं घर में करै सगाई।।''4

मध्यकालीन भारत में जातिप्रथा और छुआछात जैसे संक्रामक रोग अपने चरम पर थे। संतों ने इन संक्रामक रोगों को दूर करने का बीड़ा उठाया। इन सब कृत्यो के पीछे समाज कल्याण की भावना ही कार्य कर रही थी। वे प्रेम और सौहार्दपूर्वक व्यवहार करने के पक्षधर थे क्योंकि प्रेम में वह अमोघ शक्ति है जो सम्पूर्ण मानव जीवन को एकता के सूत्र में बाँधती है। संत दादू जी ने भी इन सामाजिक भेदभावों से दूर रहने का संदेश देते हुए कहा है कि सभी जीवों के अन्तस में वही परम ज्योति विद्यमान है। कबीरदास जी भी इसी परम ज्योति की सर्वव्यापकता को स्वीकार करते हुए बेबाक रूप से कहते हैं–

''एक बूँद एकै मल मूत्तर एक चाम एक गूदा।
एक जौति सै सब उतपना, कौन ब्राह्मण को सूदा।।''5

संतजन सत्य पथ के अनुगामी थे। वे किसी एक धर्म नहीं बल्कि मानव–धर्म को सर्वोपरि मानते थे। साथ ही सभी मनोविकारों को दूर करने का संदेश देते हैं ताकि स्वस्थ समाज की स्थापना की जा सके, जहाँ कोई रोग और शोक न हो। संतों ने सामाजिक और आध्यात्मिक स्तर पर सहज भाव को अपनाने का संदेश देते हुए कहा है–

''सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चिन्है कोय।
जिन सहज विषया तजि सहज कहिये सोय।।''6

संतों ने समाज में फैली कुरीतियों का पर्याप्त विरोध किया है। इन्होंने जातिपातिगत भेदभाव को दूर करके समता की स्थापना करके समाज–कल्याण को ही महत्त्व दिया है। संत मूलकदास का समतावाद देखिए–

''हरि ड़ारि न तोड़िए लागै दूरा बान।
दास मलूका यों कहै, अपना सा जिव जान।।''7

संत साहित्य में अहिंसा को सबसे बड़ा धर्म और हिंसा को सबसे बड़ा पाप माना है। साथ ही समतावाद को महत्त्व देते हुए कहा है कि मानव की पीड़ा को दूर करना ही सच्चा मानव धर्म है। मूलकदास जी कहते हैं कि सच्चा पीर तो वही है जो दूसरों की पीड़ा को समझकर उसे दूर करता है–

''मलुका सोई पीर है, जो जानैं पर पीर।
जो पर पीर न जानहिं सो काफिर वे पीर।।''8

इसी प्रकार वे अन्यत्र स्थान पर कहते हैं कि पीड़ा सभी सांसारिक प्राणियों को समान रूप से होती है। इसी भाव–सत्य का उद्‌घाटन करते हुए मलूकदास जी कहते हैं–

''पीर सभन की एक सी, मूरख जानत नाहिं।
कांटा चुभे पीर होय, गला काट कोउ खाहिं।।''9

संत साहित्य में मदिरापान और माँसाहार को निन्दनीय एवं त्याज्य कहा है। संत रैदास जी कहते हैं–

''दया भाव ह्रदय नहीं, भखहिं पराया मास।
ते नर नरक महैं जाइहिं, सत भाषै रैदास।''10

संतों ने ऊँच–नीच तथा जातिगत भेदभाव और वर्ण–व्यवस्था का पर्याप्त मात्रा में विरोध किया क्योंकि यह भाव समाज में अनेक विकार पैदा करता है।
इस प्रकार की भेदभावना रखने वाला समाज कभी उन्नति–प्रगति नहीं कर सकता। संतजन कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति जन्मना नीच नहीं होता बल्कि निम्न स्तरीय कर्म करने वाला व्यक्ति नीच है। यथा–

''रविदास जन्म के कारने, होत न कोऊ नीच।
नर को नीच करि ड़ारि है, ओछे कर्म को कीच।।''11

3कबीरदास जी सहज धर्म के प्रबल पोषक थे। संतों ने जिस सहज धर्म की अनुशंसा की है। उसमें मानव–धर्म को स्र्वोपरि माना हैं। संतजन वैयक्तिकता को महत्त्व न देकर सामूहिक हित और लोक कल्याण की बात करते हैं ताकि सामाजिक कुरीतियों को दूर किया जा सके। संतजन अपने पराये के भेदभाव को दूर कर पारस्परिक समन्वय पर बल देते हैं और उपर्युक्त सभी तत्त्व अहंकार का त्याग करने से ही सम्भव हैं। दादू जी कहते हैं–

''आपा मेटे हरि भजे, तन मन तजे विकार।
निरवैरी सब जीव सौं, दादू का मत सार।''12

3अहंभाव सांसारिक प्राणियों का सबसे बड़ा शत्रु है। यह भाव व्यक्ति को आध्यात्मिक ही नहीं अपितु सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर पर भी अग्रसारित होने से रोकता है। संत रज्जबदास जी कहते हैं–

''तन–त्यागी त्रिभुवन भरे, मन त्यागी कोई एक।
रज्जब रैनी सुपन में, लहियै बिगसि बमेक।।''13

हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य मध्यकाल में ही नहीं अपितु आज भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलती है। हिन्दू–मुस्लिम और मंदिर–मस्जिद के आधार पर भेदभाव और वैर–विरोध समाज के लिए हानिकारक हैं। संत रज्जबदास जी कहते हैं कि परम तत्त्व सर्वत्र विद्यमान है। जब व्यक्ति–साधक यह जान लेता है तो सब भेदभाव स्वतः ही मिट जाते हैं। संत रज्जबदास जी कहते हैं कि–

''देबल पास मसीत ह्वै, दोइ न ढ़ाहै दोई।
रज्जबदास रहीम कहि बोले बिघन न कोई।।
पीपल बड़ बाढ़हि नहीं, हिन्दु तुरक फहीम।
तौ रज्जब क्यूँ मारिये, कहतो राम–रहीम।''14

प्रायः सभी संतों ने तीर्थ–व्रत, छापा–तिलक, माला–मनके तथा स्नान आदि सभी रूढ़ियों और पाखण्ड़ों–बाह्यचारों का विरोध किया है। इन सबके पीछे लोककल्याण की संस्थापना का भाव ही छिपा हुआ है–

''गली माला तिलकु लिलाट दुई छोटी वस्त्र कपाट।
जे जाणसि ब्रह्मं करम सनि फोकट निसचउ करमं।।''15

इस प्रकार लोक कल्याण के लिए संतों ने मुक्त कण्ठ से हरिजाप करने की अनुशंसा की है। नानक जी कहते हैं–

''नावहि धोवहि पूजहि सैला, बिनु हरि रातै मैलो मैला।
गरब निबारि मिलै प्रभु सारथि, मुक्तप्रान जपि हरि किरतारथ।''16

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि संत मानवीय एकता और लोककल्याण के प्रबल समर्थक थे। उनकी दृष्टि में सारे विश्व का धर्म एक ही है और वह है–मानव–धर्म। राम–रहीम, हिन्दू–मुस्लिम, सिख–ईसाई सब एक हैं। इस प्रकार संतों ने सर्वधर्म समभाव पर बल दिया। कबीर की निम्नलिखित साखी का समान रूप से अनुगमन करते हुए अपनाने पर बल दिया और कहा कि सभी धर्मों के सार रूप को ग्रहण करके ही लोक कल्याण की भावना, सार्थक, सटीक और सारगर्भित दिखाई देती है तथा समाज को उन्नति की ओर ले जाने में सहायक सिद्ध हो सकती है–

साधु ऐसा चाहिए जैसे सूप सुभाई।
सार–सार को गहि रहै थोथा देई उडाई।।

इस प्रकार सभी संतों ने समान रूप से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का संदेश दिया है ताकि हम सब विकार रहित होकर प्राणी मात्र के कल्याण की कामना करने लगेंगे तो जातीय भेदभाव स्वतः ही समाप्त हो जायेगा तथा धार्मिक उन्माद, ईर्ष्या–द्वेष कहीं भी दिखाई नहीं देगा क्योंकि मानवता और मानव–जीवन के व्यवहार पर सब कुछ निर्भर करता है। साथ ही विश्व के सभी धर्मों एवं संतों ने दान–पुण्य, परोपकार और मानव सेवा को सर्वोपरि माना है। इन सब के पीछे उनकी लोककल्याण की भावना ही कार्य कर रही है।

**संदर्भ**

1. सम्पा. डॉ. जयदेव सिंह, कबीर वाणी, पीयूष, पृ. 12
2. सम्पादक. श्यामसुंदरदास कबीर ग्रंथावली, पृ. 82
3. वही. वही वही.
4. वही. वही. पृ. 142
5. वही. वही. पृ. 82
6. वही. वही. पृ. 71

7. मलूकवाणी पृ. 37
8. संत वाणी संग्रह मलूक. पृ.99
9. मलूक वाणी, पृ. 40
10. रैदास ग्रंथावली, पृ. 91
11. वही. पृ. 137
12. दादूदयाल की वाणी, पृ. 27
13. रज्जब वाणी, पृ. 65
14. वही. पृ. 110
15. वही. पृ. 344
16. वही. वही.